अध्याय दो

जीवन मूल्य - अवधारणा एवं स्वरूप

'परिवार' समाज की नींव है। परिवार का घटक मानव है अतः मानव को उसके पूर्ण अस्तित्व में स्वीकार करके ही 'शून्य' संकल्पना की जाती है। मूल्यों का संचालक मनुष्य ही होता हैं और मूल्यों को बनाना-बिगाड़ना मनुष्य की आवश्यकताओं पर निर्भर करता है, आवश्यकताएँ समाज-सहयोग और परस्पर अन्योश्रितता के दौर में अविष्कृत होती है। यह पारम्परिक संयुक्त मानवीय सम्बन्धों की देन हैं।

मानव की सामाजिक जीवन जीने की इच्छा उसकी उस समष्टि हित भावना को व्यक्त करती है जिसमें सभ्यता और संस्कृति विकसित होती है। सभ्यता और संस्कृति ही मानव मूल्यों की सम्पोषक एवं संवर्धक, अथ एवं इति है। सृजनशील चेतना के नए-नए आयाम उद्‌घाटित करते हुए मानव कल्याण एवं आत्मोपलब्धि का मार्ग प्रश्स्त करते हैं। ये मूल्य ही मानवीय उपलब्धियों के विविध रूप, धर्म, दर्शन कला साहित्य आदि में व्यवहृत होते हैं, जो समाज, राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों तक फैले हुए हैं।

मूल्यों के संदर्भ में यही धारणा है कि मूल्यों की अवधारणा मानव संस्कृति के विकास के साथ-साथ स्थापित हुई होगी और विकसित होती रही होगी। मूल्य काल एवं

परिस्थिति सापेक्ष होते हैं। काल सापेक्ष होने के कारण ही मूल्यों का ह्रास एवं नए मूल्यों के संश्लेषण की पहचान और अनिवार्यता सामने आती हैं।

आधुनिक युग बड़ी ही तीव्रता से परिवर्तित हो रहा है जिसमें परम्परागत एवं नवीन मूल्यों में टकराव, संघर्ष एवं संक्रमणशीलता दिखायी देती हैं। मनुष्य की भौतिक साधनों के प्रति आसक्ति एवं बढ़ते हुए पूँजीवाद ने एक नई अर्थ संस्कृति को जन्म दिया है। राजनीतिक स्तर पर बढ़ते हुए भ्रष्टाचार, बेईमानी, अराजकता, अधिकारों का दुरुपयोग, अकर्मण्यता आदि विकृतियों से समाज आक्रान्त हुआ है और जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में इन विकृतियों का प्रभाव गहराई तक है जिससे समाज में मूल्य विघटन और मूल्यहीनता की स्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं। ग्राम्य-कस्बाई-नगरीय और महानगरीय परिवेश में पारिवारिक, सामाजिक एवं संस्कृतिक स्तर पर भी नए-पुराने मूल्यों के द्वन्द्व और मूल्यविघटन की स्थिति को स्पष्टतः देखा जा सकता हैं।

वैज्ञानिक आविष्कारों ने आधुनिक जीवन और नवीन दृष्टि मानव को दी। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हम एक दूसरे के समीप आ गये हैं इसीलिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर घटित होने वाली प्रत्येक घटना मानवीय जीवन और चिन्तन को प्रभावित कर रही है। परिणामतः स्वातन्त्रोत्तर दौर में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक प्रगति के कारण परिवर्तित परिस्थितियों के अन्तर्गत अस्तित्ववाद, फ्रायडवाद और मार्क्सवाद आदि पाश्चात्य चिन्तन ने भारतीय पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को प्रभावित एवं परिवर्तित किया है। हिन्दी कहानी साहित्य की एक सशक्त एवं महत्वपूर्ण विधा होने

के कारण स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी ने स्वातन्त्र्योत्तर परिवर्तित राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक और आन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में व्याप्त मूल्यबोध को अत्यन्त सहजता, सक्षमता, सूक्ष्मता और परिवेशगत यथार्थ के साथ अभिव्यंजित किया हैं।

2.1 मूल्य की अवधारणा

सृष्टि के आरभ्म से अब तक मानव द्वारा भौतिक जगत् से आध्मात्मिक स्तर पर जो चिन्तन किया गया है वह परकल्याण की भावना से अनुप्रणित रहा है। इसी आध्यात्मिक और आत्मिक चिन्तन के परिणामस्वरूप ही मानव की एक-दूसरे के प्रति आत्मीय भाव रहा है। इसी भावना को- 'मानवता' की संज्ञा दी गयी है। मानवीय गुणों के कारण ही मानवीय कल्याण का कार्य सिद्ध होता है। धर्म, दर्शन, संस्कृति, साहित्य आदि के मूल में मानवता ही प्रमुख है।

प्रकृति का वरदहस्त प्राप्त मानव ने अपने बौद्धिक और भावात्मक रूप से श्रेष्ठ सुविधापूर्वक जीवनयापन करने के लिए कुछ नियमों का निर्धारण किया है जो देशकाल की सापेक्षता से लेकर सार्वभौमिक और सार्वकालिक हैं। भौतिक क्षेत्र में विकास करने के साथ-साथ मनुष्य ने अपनी चिन्तन शक्ति आत्मोपलब्धि के लिए सूक्ष्म भाव-जगत् और उससे भी आगे अध्यात्म तक की खोज में 'स्वयं' को नियोजित किया। इसी प्रक्रिया में आत्मचिन्तन द्वारा कुछ अनुभूतियों का उदय हुआ उन्हीं उपलब्धियों और युगीन परिवेश के अनुसार देश-काल की सीमाओं में भिन्नता होने

लगा। इसीलिए प्रत्येक देश की भौगोलिक और युगीन परिस्थितियों की भिन्नता के कारण प्रत्येक देश के धर्म, दर्शन और संस्कृति में भिन्नता लक्षित होती है; इन भिन्नताओं के बावजूद भी मूल्यों के निर्धारण में मानवीय कल्याण की भावना ही केन्द्रीय भावना के रूप में रही है, यही भावना मानवता की स्थापना में अपना पूर्ण योगदान देती है।

'मूल्य अवधारणा' से तात्पर्य, मानव की उस मावनतावादी दृष्टि से है जिसे अपना मानव 'मम्' और 'ममेतर' से ऊपर सर्वजनहिताय ऐसे नियमों अथवा धारणाओं का विकास करता है। मूल्य अवधारणा मानवतावादी दृष्टि से निष्पन्न एक नियम सम्पन्न चेतना का नाम है।

2.2 'मूल्य' : सामान्य अर्थ

जीवन के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी अर्थ में 'मूल्य' शब्द का प्रयोग होता रहा है। अशिक्षित व्यक्ति से लेकर शिक्षित, बौद्धिक एवं चिन्तक व्यक्ति द्वारा प्रतिदिन मूल्य शब्द व्यवहार में लाया जाता है। मूलतः मूल्य किसी वस्तु की केन्द्रीय गुणवत्ता का सूचक है। सामाजिक व्यवस्था में वस्तुओं के विनिमय के दौर से लेकर मुद्रा के चलन तक 'मूल्य' शब्द वस्तु की कीमत के रूप में प्रचलित हो गया। तो चिन्तन जगत के मूल्य आज भी वस्तु के भीतरी गुण अथवा उपयोगकर्ता की अभीष्टता को पूर्ण करने की शक्ति के भीतरी गुण अथवा उपयोगकर्ता की अभीष्टता को पूर्ण करने की शक्ति का ही अर्थ देता है। 'मूल्य' शब्द का सामान्य अर्थ है -

'किसी भी वस्तु के गुणों को मापने की कसौटी'। बी. आई. लेनिन के अनुसार-- ''प्राथमिक रूप में एक वस्तु मानव की आवश्यकता को सन्तुष्ट करती है, गौण रूप में एक वस्तु को दूसरी वस्तु के लिए बदला जा सकता है। एक वस्तु की उपयोगिकता ही उपयोगी मूल्य का निर्माण करती है।''[1] (A commodity is in the first place, a thing that satisfies a human want in the second place, it is a thing that can be exchanged for another thing. The utility of a thing makes it a use values) वास्तव में मूल्य की सार्थकता उसी समय तक है जब तक वह मानवीय आवश्यकता की सन्तुष्टि करे और यदि उसकी अर्थवत्ता समाप्त होती है तो उसमें परिवर्तन भी किया जा सकता है। समाजशास्त्रीय शब्दकोश में मूल्य की परिभाषा इस प्रकार है - ''किसी वस्तु की मानवीय आकांक्षा को पूरी करने वाली विश्वस्त योग्यता किसी वस्तु का वह गुण जो व्यक्ति अथवा व्यक्ति के समूह के लिए उसे रुचिकर बनाता है।''[2] उसे मूल्य कहते हैं। मूल्य शब्द धीरे-धीरे अपनी गरिमा के आधार पर व्यापक अर्थों में प्रयुक्त होने लगा हैं। मूल्य का सम्बन्ध केवल बाह्य और भौतिक वस्तुओं तक ही सीमित नहीं रहा अपितु यह शब्द जीवन के सत् पक्षों के साथ जुड़कर आन्तरिक जगत् (भाव-जगत) से स्थापित हुआ। इस प्रकार मूल्यों का रूप भी मूर्त से अमूर्त हुआ और इसमें जीवन के सूक्ष्म तत्वों का समावेश हुआ।

2.3 मूल्य परिभाषा एवं स्वरूप

(1) अर्बन- ''ऐसी कोई भी वस्तु मूल्य हो सकती है जो जीवन को आगे बढ़ाती है और सुरक्षित करती है।''[3]

(2) एच. एम. जान्सन - एच.एम. जान्सन के मतानुसार ''मूल्यों को एक 'धारण' या मान के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह धारणा सांस्कृतिक हो सकती है और व्यक्तिगत भी। उसके द्वारा उचित या अनुचित, स्वीकार्य या अस्वीकार्य, अच्छे या बुरे का शास्त्रीय विवेचन किया जाता है और नैतिकता की कसौटी पर परखा जाता है।''[4]

Value may be defined as a conception or standard cultural, or merely personal by which thing are compared and approved or disapproved relative to one another held to be relatively desirable or undesirable, more meritorious or less correct.

(3) कलकहान - ''मूल्य स्पष्ट अथवा सामुदायिक विशेषता के नाते एक ऐसी वांछित संकल्पना है जो उपलब्ध लक्ष्यों, साधनों एवं साध्यों के चुनाव को प्रभावित करते हैं।'' ''A value is a conception explicit or implicit, distinctive of an individual or characteristic of a group of the desirable which influanced the relation from avariable modes, means and action."[5]

(4) वूडूस - के अनुसार 'मूल्य' दैनिक जीवन में व्यवहार को नियन्त्रित करने के सामान्य सिद्धान्त हैं। मूल्य केवल मानव व्यवहार की दिशा निर्धारण ही नहीं करते, बल्कि अपने आप में आदर्श और उद्देश्य भी होते हैं - ''मूल्यों में केवल यही नहीं देखा जाता है कि जो कुछ है वह सही है या गलत।''[6]

(5) बोगार्ड्स- बोगार्ड्स के अनुसार सभी मानवीय सम्बन्ध और व्यवहार मूल्य ही हैं। ''By their Nature all human relation and behaviour are values.''[7]

(6) 'द इंडियन माइंड' नामक ग्रन्थ में मूल्यों की चर्चा करते हूए मूर ने कहा है कि ''भारतीय मूल्य आयोजन में पुरुषार्थों को स्वीकार किया गया है।'' "The Indian scheme of values recognizes four human ends (purusarths) They are wealth (Artha) Pleasure (kama) religiousness (Dharma) and freedom (moksa)."[8]

उसी प्रकार विद्धानों की परिभाषाओं को देखने-परखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि मूल्य उन्ही व्यवहारों को कहा जाता है, जिनमें मानव जीवन का हित समाविष्ट है जिनकी रक्षा करना समाज अपना सर्वोच्च कर्तव्य मानता है। मूल्य एक प्रकार की शाश्वतता का बोध कराते हैं ये जीवन के आदर्श एवं सर्वसम्मत सिद्धान्त होते हैं। मूल्य उस सर्वसम्मत व्यवहार को कहते हैं, जिसे अपनाकर कोई जाति, धर्म या समाज सार्वजनिक जीवन को सुन्दर बनाने का नियोजन करता है। मूल्य सामाजिक मान्यताओं के साथ बदलते रहते हैं किन्तु उनमें अर्न्तनिहित मंगलकामना और सार्वजनिक हित की भावना कभी तिरोहित नहीं होती। नये परिवेश में पुरानी मान्यताएं जब कालातीत हो जाती है तो समाज नयी मान्यताओं को स्वीकार कर लेता हैं और वे ही मान्यताएँ 'मूल्य' बन जाती हैं।

मूल्य परम्परा का प्राणतत्व हैं। प्रत्येक समाज में परम्परागत व्यवहार और मान्यता नदी के प्रवाह की तरह सतत चलती रहती हैं। ''जिस प्रकार नदी के मूलप्रवाह में यत्र-तत्र अनेक धाराएँ आ मिलते हैं उसी प्रकार नयी परम्पराएँ और रूढ़ियाँ अस्तित्व में आती रहती हैं। पुरानी मान्यताएँ अपना अस्तित्व खोती जाती हैं, पर मूलधारा का प्रवाह नहीं टूटता। यह मूलधारा परम्परा कहलाती है। मूल्य इसकी शाश्वत मान्यताएँ हैं।''[9] इस सन्दर्भ में हिन्दी के विविध विद्धानों की मान्यताएँ देखना उपयुक्त होगा ।

(1) डॉ. देवराज - ''मूल्य होते हैं जिनकी मनुष्य कामना करता है। चरम मूल्य उन वस्तुओं, स्थितियों तथा व्यापारों अथवा उनके उन विशिष्ट पहलुओं को कहते हैं जो मनुष्य की सार्वभौम संवेदना को आवेगात्मक अर्थवत्ता देते हुए दिखाई देते हैं।[10]

(2) डॉ. प्रभाकर माचवे - ''मानवीय क्रियाओं में, आचार व्यवहार में, अच्छाई या शिवत्व का मूल्य क्या है, यही नीति शास्त्र का विषय है।''[11]

(3) डॉ. मुखर्जी - ''किसी भी समाज में सभी मूल्य स्वीकार नहीं किये जाते। मान्यताएँ और परिस्थितियाँ जिस प्रकार की होंगी, उसी प्रकार मूल्य की स्वीकृति होगी।''[12]

(4) डॉ. आनंदप्रकाश दीक्षित- ''मेरे लिए आदर्श या उदात्त लक्ष्य के अभाव में किसी 'मूल्य' जैसे शब्द की धारणा संभव नहीं है। 'मूल्य वह है कि जिसके पीछे हम चलना चाहें जिसे हम उपलब्धि के योग्य समझें, जिसे जीवन में महत्व दे सके।''[13]

(5) श्री. प्र.ग. सहस्त्रबुद्धे - ''उन्नतिशील व्यक्ति एवं राष्ट्र की कुछ कसौटियाँ हैं। उन कसौटियों पर जो खरे उतरे वे ही तर गये, जीवन की परीक्षा में वे उत्तीर्ण हुए। जिन्हें आवश्यक गुणांक मिल न सके वे फिसल गए, अनुत्तीर्ण हुए। ये जो आवश्यक गुण है उन्हीं को श्रीमद्भागवत गीता में 'देवी सम्पन्न' के नाम से सम्बोधित किया गया है। आधुनिक परिभाषा में इन्हीं को 'जीवन मूल्य' कहते हैं।''[14]

(6) हिन्दी साहित्य कोश - ''मुल्य और प्रतिमान समानार्थी शब्द हैं। दोनों ही मानव निर्मित कसौटियाँ हैं, जिनके सहारे साहित्य का मूल्यांकन किया जाता हैं। मनुष्य के कुछ वैयक्तिक व्यवहार होते हैं, परन्तु समाज, नगर, प्रान्त, राष्ट्र और समाज का सदस्य होने के नाते उसे कुछ सामाजिक बन्धनों को स्वीकार करना पड़ता हैं।''[15]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट होता है कि मूल्यों का जैसे व्यक्तिगत संदर्भ में महत्व है उसी प्रकार सामाजिक संदर्भ में वे महत्वपूर्ण हैं।

2.4 मूल्य का स्वरूप

मूल्य सम्बन्धी भारतीय दृष्टिकोण मूल्यों के जीवन संदर्भ में ही क्रियान्वयन की अनिवार्यता को स्वीकार करता है। भारतीय आचार्यों और ऋषिमुनियों ने जीवन को श्रेष्ठ बनाने और परमानंद की प्राप्ति के लिए जिन पुरुषार्थों की रचना की हैं उसे ही भारतीय दर्शनशास्त्र में मूल्यों के रूप में स्वीकार किया गया है। जिनका पालन करके मनुष्य इहलोक और परलोक दोनों को सुखी बनाता है। पुरुषार्थ का सामान्य अर्थ है-

अर्थ, काम, मोक्ष, धर्म । इन चारों पुरुषार्थो के आधार पर ही भारतीय जीवन टिका हुआ है और इन्हीं के अनुसार जीवन जिया जाता हैं।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृण्णन ''जीवन को संयोग, भाग्य और चरित्र के ताने-बाने से बुना रहस्यमय कपड़ा मानते हैं।''[16] डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार जीवन में कुछ मूल्य शाश्वत होते है एवं कुछ सामाजिक होते हैं। शाश्वत मूल्य स्थायी होते हैं तो सामाजिक मूल्य परिस्थिति एवं समय के अनुसार परिवर्तित होते हैं। जीवन मूल्य को हम जीवन धर्म का पर्याय मान सकते हैं। जीवनमूल्य समय सापेक्ष होने के कारण परिवर्तित होते रहते हैं जिस युग में जीवन के जो आदर्श समाज मान्य हो जाते हैं, युग परिवर्तन के साथ परिवर्तित किए जाते हैं। कुछ जीवन मूल्य शाश्वत नहीं होते, युग परिवर्तन के साथ परिवर्तित होते रहते हैं। ''परम्परा में बदल की स्थिति का निर्माण जब होता है, तब नवीनता का साक्षात्कार होता हैं और नवीनता को आत्मसात कर लेने पर जो बच पाता है, वह परम्परा होती है।''[17] इस प्रकार डॉ. भगवानदास वर्मा जी ने मूल्यों की चर्चा करते हुए कहा हैं। उनके मतानुसार जीवन-मूल्य समयानुसार बदलते रहते हैं, जैसे वृक्ष के पुराने पत्ते गिरते हैं और उसी का स्थान ग्रहण करने के लिए नये पत्ते जन्म लेते है, उसी प्रकार नये जीवन मूल्यों को अपना कर जो बचता है, वह परम्परा हैं।

भारतीय-समाज में परम्परा और नये मूल्यों का संघर्ष प्रबलता से अनुभव किया जा रहा है। आज का व्यक्ति, संघर्ष को झेल ही नहीं रहा वरन् इसमें से राह पाने

का प्रयत्न कर रहा है। आज समाज में नये-नये मूल्य निर्माण हो रहे हैं, पुराने मूल्यों पर संकट आ रहे हैं। विज्ञान पर विश्वास रखनेवाले लोग रुढ़िगत मान्यताओं को कम महत्व देने लगे हैं। प्राचीन काल में विवाह संस्था की पवित्रता स्वीकार की गयी थी, लोगों की विवाह के प्रति अनुकूल धारणा विद्यमान, थी, अतः विवाह समाज में महत्वपूर्ण मूल्य के रूप में स्वीकृत था लेकिन आज विवाह के बन्धन शिथिल होने लगे, विवाह-विच्छेद को इतना बुरा नहीं माना जाता, वैवाहिक सम्बन्धों में पड़ती हुई दरार ने विवाह की अनिवार्यता पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है। अनेक पुरुष और स्त्रीयाँ अविवाहित जीवन जीने में रुचि दिखाने लगे हैं। हर समाज तथा संस्कृति की भिन्न-भिन्न जातीय विशेषताएँ होती है जो मूल्य संस्कार को रूप प्रदान करती रहती हैं। जीवन की सहजता स्वयं एक मूल्य है। हमारी सभ्यता ने हमारे ऊपर इतने कृत्रिम आवधारणा डाल रखे हैं, कि हम मनुष्य की तरह जिन्दगी न जीकर यंत्र की तरह जीते हैं। हमारे पाप-पुण्य दोनों बनावटी हो गये हैं। किसी चीज को सही समझकर उसे सही नहीं कर पाते, धीरे-धीरे बनावटी जीवन-मूल्यों और पद्धतियों को ओढ़ बैठे हैं। मूल्य दैविक चमत्कार की भाँति अचानक उत्पन्न नहीं होते हैं। मूल्यों का विकास समाज के साथ-साथ हुआ हैं। मनुष्य बनता है, बिगड़ता हैं।

निष्कर्षरूप से परिभाषाओं और विविध मन्तव्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि मूल्य एक ऐसी धारणा है जो जीवन को गति प्रदान करके मानव को विशिष्ट आचरण के माध्यम से आत्मोपलब्धि की ओर अग्रसर करके बाह्य और आन्तरिक

रूप से मानव जीवन को समृद्ध, सुन्दर और गतिमान बनाते हुए आदर्श प्रस्तुत करती हैं। मूल्यों की अनिवार्य परिणति मानवीय सम्बन्धों को पुष्ट करने में होती है। मूल्यों का महत्व मानव जीवन में असाधारण है चाहे समय-समय पर होने वाले परिवर्तनों के कारण सामाजिक विघटन के साथ मूल्य टूटते हैं, बनते हैं, तो भी उनकी स्थिति हमारे जीवन में अनिवार्य हैं।

2.5 मूल्य विकास

हर एक समाज अपनी आवश्यकता के अनुसार मूल्यों का निर्माण करता हैं। परिवर्तन सृष्टि का अनिवार्य क्रम है, अतः नये युग में नये मूल्यों का निर्माण आवश्यक हो जाता है। धर्मवीर भारती परम्परागत मूल्यों की व्यर्थता और नये मूल्यों की अर्थवत्ता की चर्चा करते हुए कहते हैं कि, ''पुराने मूल्य अब मिथ्या लगने लगे हैं, ऐसी श्रद्धा और आस्था जो हमें नर बली तक के लिए विवश करे और वह करुणा जो दान दया के द्वारा व्यक्त हो पर समाज के वैषम्य विधि का विधान मानकर स्वीकार कर ले, इस प्रकार की श्रद्धा और करुणा अमानवीय वृत्तियों को जन्म देती हैं, वे मानवीय गौरव को प्रतिहित करने के बजाय उसको विकलांग बनाते हैं।''[18] नये मूल्य पुराने मूल्यों को तोड़कर समय-समय अपना रूप बदलते हैं। 'मूल्य विकास यात्रा' मनुष्य के अथक परिश्रम का फल है, सत्य, अहिंसा, सहअस्तित्व, सहानुभूति इत्यादि मूल्य परम्परागत समाज से प्राप्त होते हुए भी जीवन में उनकी परिणति प्रयत्न द्वारा ही

संभव हुई हैं। मनुष्य समाज से ही मूल्यों का अर्जन करता हैं, व्यक्तित्व विकास के साथ ही साथ मूल्यों को अपने जीवन में स्वीकार करने का प्रयत्न करता हैं। मूल्यों का यह विकास समाज के विभिन्न घटकों द्वारा होता हैं। भारतीय जीवनप्रणाली में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन उदात्त मूल्यों का असाधारण महत्व था परन्तु वर्तमान आधुनिक युग में उनके प्रति उपेक्षा दिखाई देने लगी है इसका महत्वपूर्ण कारण है कि भारतीय जीवन प्रणाली पर हावी हो रहा पाश्चात्य जीवन प्रणाली का प्रभाव है। भौतिकवादी भोगपूर्ण दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप उन उदात्त मूल्यों के प्रति उपेक्षा भाव निर्माण हुआ।

2.6 मूल्य वर्गीकरण एवं प्रकार

मनुष्य अपने भौतिक विकास के साथ-साथ अपने चिन्तन, एवं विवेक के द्वारा कुछ नए उर्ध्वशाली एवं सूक्ष्म प्रकार की उपलब्धियाँ उद्‌घाटित करते हूए उसे विघटनकारी होने से बचाता हैं। इसीलिए 'मानव जिस दिशा और जिस रूप में कुछ जीवनोपयोगी नया खोजता है, उसी के अनुसार नए-नए मूल्यों की स्थापना करता रहता है। उसका यह अन्वेषण क्रम जारी रहता है।''[19] इस सारे अन्वेषण का केन्द्र अस्तित्व रक्षा को माना जाता है। इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र कहते हैं ''मानव विश्व का सर्वेश्रेष्ठ रूप है अतः उसकी अस्तित्व रक्षा ही जीवन का प्राथमिक मूल्य हैं।'' वास्तविकता तो

यह है अस्तित्व-रक्षा ही चरण-मूल्य हैं। शेष सभी मानवीय अस्तित्व को ही सुखमय, सुन्दर एवं वैज्ञानिक बनाने से जुड़े हुए हैं।

इस दृष्टि से मूल्यों का कोई निश्चित एवं वैज्ञानिक वर्गीकरण नही किया जा सकता। प्रत्येक युग की परिस्थितियाँ और परिवेश में घटित परिवर्तन के कारण उस युग के मूल्यों में भी परिवर्तन एवं विघटन होने लगता है। कुछ मूल्य महत्वहीन हो जाने से अपनी अर्थवत्ता खो देते हैं और कुछ नए उभरते हुए मूल्य मानवी-चेतना को प्रभावित करते हैं। पुराने-नए के इस द्वन्द्व में ही नए मूल्यों की खेज शुरु हो जाती है क्योंकि ''मूल्य वस्तु विषय न होकर एषणापेक्ष विकल्पनात्मक विषय है।''[20] परन्तु मात्र इच्छा के आधार पर निर्मित मूल्य मानवीय चेतना का उन्नयन नहीं कर सकते। प्रत्येक मूल्य की पृष्ठभूमि में विवेक का होना आवश्यक है। आवश्यकता के संदर्भ और विवेक की कसौटी के आधार पर ही नए मूल्यों की स्थापना होती है - सैद्धान्तिक, आर्थिक, सौदर्यात्मक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक। इन मूल्यों में भौतिक मूल्यों की उपेक्षा की गई है क्योंकि सैद्धान्तिक मूल्य के अन्तर्गत 'सत्यं और सुन्दरता' को लिया गया है। वास्तव में व्यक्ति का जीवन भौतिक मुल्यों से आरम्भ होता है और उसके बाद उपरोक्त अन्य मूल्यों के रूप में वह अपना आत्मसंस्कार करता है। एनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका में मूल्यों को आर्थिक, नैतिक, राजनैतिक, सौन्दर्यात्मक और धार्मिक श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है।

भारतीय आचार्यों ने चार पुरुषार्थ में अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष के रूप में जिन मूल्यों को वर्गीकृत किया है उनका उद्देश्य यह है कि मानव अपने धर्म के आधार पर अर्थ आर्जित कर और अपनी लौकिक इच्छाएँ पूरी करते हुए मोक्ष की प्राप्ति करे। लेकिन इस वर्गीकरण को मान लेने से मूलभूत कठिनाई यह है कि धर्म और मोक्ष श्रेणियों को इस जीवन से बाहर परलोक से जोड़कर देखा जाता है। परन्तु वैश्विक स्तर पर और वर्तमान सन्दर्भों में धर्म पारम्पारिक अर्थों में अपनी गरिमा खोता जा रहा है और अतिभौतिकतावादी मानवीय प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप मानव इस लोक से परे किसी भी ऐसे लोक में विश्वास नहीं रखता जो उसके भौतिक दृष्टिकोण से विपरीत पड़ता है। इसीलिए मूल्यों का यह वर्गीकरण मान्य करने में बड़ी कठिनाई है।

अन्ततः यह कहना होगा कि मानव का जीवन जिन परस्थितियों के अन्तर्गत चालित रहता है, उन्हीं को आधार पर मूल्यों को वर्गीकृत किया जा सकता है। वैज्ञानिक प्रभाव के कारण विश्व के देशों की भौगोलिक सीमाओं का अन्तर भी बहुत कम हो जाने के कारण मानवीय चिन्तन और घटित होने वाली घटनाएँ अपने-अपने राष्ट्र तक ही सीमित नहीं रही अपितु अन्तर्राष्ट्रीय चिन्तन एवं घटनाओं का प्रभाव भी मानवीय चेतना को प्रभावित करता है। इस दृष्टि से मूल्यों का वर्गीकरण इस प्रकार है- राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और अन्तर्राष्ट्रीय।

साहित्य के अन्तर्गत मूल्य के वर्गीकरणों की चर्चा विविध विद्वानों ने की है।

(1) जे. एस. मैंकेंजी- के मतानुसार मूल्यों का वर्गीकरण साधन मूल्य और स्वतः मूल्य और तथा अस्ति मूल्य और नास्ति मूल्य के रूप में किया है।''[21] मैंकेजी ने स्पष्ट किया है साधन-मूल्यों को व्यक्ति तथा समाज कुछ समय के लिए स्वीकार करता है बाद में उन्हें भुला दिया जाता है। किन्तु स्वतः मूल्य अपने आप में साध्य होते हैं, वे स्वार्थी जीवन मूल्य होते है।

2. अर्बन- अर्बन ने मूल्यों का वर्गीकरण आठ वर्गों में बाँटा है।

3. मिस लेरिंग ने '' मूल्यों को नैतिक मूल्य और अनैतिक मूल्य में विभाजित किया है।''[22]

4.एवरेट- पश्चात्य विचारक एवरेट ने 'मोरल वैल्यूज' नामक ग्रन्थ में मूल्यों को आठ वर्गों में वर्गीकृत किया है। इसी प्रकार हिन्दी विद्वानों ने भी मूल्यों का वर्गीकरण किया है। ''ड़ॉ. रमेश कुमार मूल्यों का विभाजन करते समय मूल्यों को कबीले के मूल्य (Tribunal Values), पारिवारिक मूल्य (Domestic values), राजनैतिक मूल्य (Political values) आदि में विभाजित करने के पश्चात् मूल्यों के व्यापक श्रेणी विभाजन में आर्थिक मूल्य भोगवादी मूल्य तथा नैतिक मूल्य का समावेश किया है। लेखक ने मूल्यों के विभाजन में विभिन्न पाश्चात्य विचारकों को ही आधार बनाया है।''[23]

इस प्रकार प्रत्येक विद्वानों ने अपने मतानुसार अपनी बौद्धिक दृष्टि से मूल्यों का विभाजन प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से डॉ. रमेश देशमुख कहते हैं- ''मेरी दृष्टि से

मूल्यों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- (1) शाश्वत मूल्य (2)परिवर्तनीय मूल्य। हम शाश्वत मूल्य को स्थिर मूल्य कहते हैं जो कुछ मूल्यों में समय के साथ-साथ परिवर्तन आया है, उन्हें बदलते मूल्यों की पंक्ति में रखा जा सकता है।''[24] शाश्वत मूल्यों में कोई परिवर्तन नहीं आता, वे हर काल और हर देश में समान रूप से स्वीकार किये जाते हैं। जैसे - प्रेम, अहिंसा, दया, सत्य, समर्पण, वात्सल्य, मातृत्व, भातृ-प्रेम। परिवर्तनीय मूल्य मानव सभ्यता के विकास के कारण एवं नवीन भौतिकवादी दृष्टिकोण के अनुसार परिवर्तित होते हैं।

2.7 मूल्य और साहित्य का सम्बन्ध

साहित्य और समाज का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है। जीवन का जटिल इतिहास ही साहित्य का प्रमुख विषय है। जीवन ही साहित्य को बनाया है इसीलिए जीवनमूल्यों का और साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है । जीवन के शाश्वत मूल्य सत्यं, शिवं, सुन्दरम् तीनों की सामंजस्यपूर्ण प्रतिष्ठा ही सफलता की पराकाष्ठा है। सत्यं उसकी आधार भूमि है, शिवं उसका लक्ष्य औऱ सुंदर उस लक्ष्य तक पहूँचने का साधन है, 'हितेन सह सहितं' कहकर साहित्य शब्द के व्याख्याकारों ने उसमें स्वयं कल्याण भावना की प्रतिष्ठा की है। साहित्य स्थापित जीवन मूल्यों से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर अपनी प्रणाली से देता है। जीवनमूल्य परिवर्तनशील हैं। परिवर्तमान स्थितियों को समय का रचयिता साहित्यकार अपनी अन्तर्दृष्टि से देखता है। प्रचलित मूल्यों को अस्वीकारण कर नये मूल्यों की रचना

करता है। इस दृष्टि से साहित्य के मूल्य जीवन के मूल्यों के विरोधी नहीं हो सकते। भारतीय बुद्धिवादी जीवनमूल्यों को साहित्य की सर्वोच्च कसौटी मानते हैं।

साहित्य को मानव समाज के लिए उदात विचारों तथा तत्वों का विवेचन करना होता है। मूल्य शब्द की समाज-कल्याण या मानव हित वाले अर्थ तक ही सीमित नहीं रहता है। वह तो साहित्य में शिव के साथ-साथ सत्य और सुन्दर को भी समाहित करता जाता है। जीवन लक्ष्य से जुड़े हुए जीवनमूल्यों की पहचान हम साहित्य के जरिए कर सकते हैं इस संदर्भ में डॉ. रघुवंश कहते हैं- रचनाकार समाज की सम्पूर्ण व्यवस्था के विरुद्ध खड़े होकर, उसके समस्त मूल्यों को नकारकर प्रतिष्ठित आदर्शों को चुनौती देकर भी अपनी रचना प्रक्रिया में किन्ही न किन्हीं मूल्यों की भूमिका प्रस्तुत करता ही है।''[25]

तात्पर्य साहित्य एवं मूल्य इनका सम्बन्ध देखने के पश्चात् स्पष्ट होता है साहित्य के मूल्य जीवन की उस मूल्यवत्ता के प्रतीक होते हैं जिन्हें कोई युग सहर्ष स्वीकार करता है। साहित्य में मानव जीवन सम्बन्धी मूल्यों की ही चर्चा की जाती है जो समाज के लिए उपयोगी हो ।

2.8 जीवन -मूल्य और कथा साहित्य

साहित्य की विविध विधाओं के अन्तर्गत मूल्यों की चर्चा की जाती हैं। कथा साहित्य विधा के अन्तर्गत भी जीवनमूल्यों की चर्चा व्यापकतम रूप में की जा चुकी है। स्वतंत्रतापूर्व और स्वातन्त्र्योत्तर काल में लिखी गयी कथा साहित्य में यह बात

दिखाई देते हैं कि स्वातन्त्र्योत्तर काल में लिखी गयी कथा साहित्य में विस्तृत रूप से यथार्थ के धरातल पर मानवजीवन के लिए उपयोगी एवं महत्वपूर्ण मूल्यों की चर्चा सर्मपक रूप में की गयी है।

आज की कथा साहित्य ने काल्पनिकता को त्यागकर 'सत्य' को अपना विषय बनाया है। यह सत्य हमारी रुढ़ियों, परम्पराओं, मान्यताओं, रीतिरिवाजों के साथ-साथ मूल्यों से जुड़ा है। टूटते हुए पारिवारिक सम्बन्ध, बनते हुए नवीन सम्बन्ध, नारी आर्थिक संघर्ष, नारी का प्राचीन भावभूमि से निकलकर नवीन भावभूमि में प्रवेश मानव के अस्तित्व का प्रश्न इस परिवर्तन के कुछ आयाम है जो कहानी साहित्य में अभिव्यक्त हुए हैं।

साहित्यकार अनिवार्य रूप से समाज के प्रति समर्पित होता है। वह अपनी रचनाओं के द्वारा जीवन मूल्यों के माध्यम से इसी साहित्यकर्म के दायित्व की पूर्तता करता है। साहित्य की विविध विधाओं में से 'कहानी' विधा मूल्यों के प्रति उसके जन्मकाल से ही समर्पित रह चुकी है।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में धीरे- धीरे समाज परिवर्तन की प्रक्रिया के साथ-साथ साहित्यिक प्रवृत्तियों में भी परिवर्तन आरम्भ हुआ। स्वातंत्र्य उपलब्धि ने जनता में नवीन आशा-आकांक्षाओं का नया संचार किया। स्वातंत्र्य प्राप्ति के प्रयासों से भारतीय जनता की एक ऐसी मानसिकता हो गयी थी, जिसमें राष्ट्रनेताओं के प्रति अगाध विश्वास था कि स्वातंन्त्र्य मिलते ही देश की जनता को आर्थिक और सामाजिक मुक्ति

मिलेगी परन्तु आज़ादी मिलते ही भारत विभाजन के रक्तरंजित इतिहास ने सबसे पहले भारतीय जनता का मोहभंग किया, करोड़ों शरणार्थियों के पुनर्वास की समस्या, देशी रियासतों के विलय का प्रश्न, युगों-युगों से टूटी हुई अर्थव्यवस्था को सुधारने की ज़रूरत और न जाने कितने ही प्रश्न जो भारतीय जनता से जुड़े हुए थे। उन्हें जिस आर्थिक व सामाजिक मुक्ति की आशा थी वह पूर्ण न होते देखकर उनका धैर्य समाप्त हो गया। भारतीय जनता ने देश के जिन नेताओं की ईश्वर के समान मानकर पूजा की थी वे नेता ही उनके लिए सबसे बड़े शोषक सिद्ध हुए। भारतीय राजनीति जीवन मूल्यों से निरन्तर दूर होती गयी। राजनीति नेताओं के लिए व्यापार बन गयी। ''इन समस्त परिस्थितियों ने व्यक्ति को बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी और सामाजिक से वैयक्तिक बना दिया, व्यक्ति आत्मकेन्द्रित हो गयी। वह स्वहित को ही सर्वोपरि समझने लगा। अवसरवादिता, स्वार्थान्धता, बेईमानी, भ्रष्टाचार और स्वाहित ने देश में गहरी अव्यवस्था उत्पन्न कर दी। देशवासियों का नैतिक पतन और व्यर्थ की नारेबाजी ने गाँधीजी के रामराज्य को स्वप्न बना दिया । चहुँ ओर कुण्ठा, निराशा, संत्रास और दिग्भ्रम की स्थिति दिखलायी देने लगी थी।''[26]

सन् 1960 तक आते-आते व्यवस्था के प्रति जनता को मोह टूटता ही चला गया। इसीलिए सन् 1960 के आस पास का समय स्वतंत्र भारत ऐसा काल-बिन्दु माना जा सकता है जहाँ पर भारतीय जनता का चिन्तन ढंग बदलने लगा था, यहाँ आशा का स्थान निराशा ले रही थी। मोह के स्थान पर मोहभंग उपस्थित होने लगा था

और कल्पनाशीलता और स्वप्रशीलता का स्थान यथार्थ की कड़वाहट ने ले लिया था। इसी अव्यवस्था का परिणाम था कि देश में भाषावाद, प्रांतीयता, क्षेत्रीयता, साम्प्रदायिकता आदि को लेकर झगड़े शुरु हुए। इसी स्थिति को देखते हुए साहित्यकारों ने अपने साहित्य द्वारा जन-जागरण और सामाजिक परिवर्तन का प्रयत्न किया और आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं ने और विकराल रूप धारण किया। इस संदर्भ में कमलेश्वर का कथन हैं- ''ऐसे ही समय में जब कि पुराने लेखकों के सृजन स्रोत सूख रहे थे और नया पाठक वर्ग बदलते हुए मानव- मूल्यों की अभिव्यक्ति चाह रहा था, नयी कहानी की उदय हुआ था।''[27]

इस प्रकार सातवां दशक एक कसमसाहट के साथ प्रारम्भ हुआ, इसी के परिणामस्वरूप सातवें और उसके पश्चात के दशकों के साहित्य में नयी विचारधारा का जन्म हुआ उसी की अभिव्यक्ति नयी कहानी में हुई। वैसे तो सातवाँ दशक युद्धों से आक्रान्त रहा। हमारे बजट का अधिकांश हिस्सा सैन्य बजट में समाहित होता गया इसका दुष्परिणाम के कारण हमारे पारम्परिक जीवन मूल्य लड़खड़ा गये। इनकी चर्चा करते हुए ड़ॉ. शिवदान सिंह लिखते हैं- ''समस्त वैज्ञानिक तथा भौतिक प्रगति के बावजूद भारतीय जनजीवन स्वातंत्र्योत्तर काल में गरीबी, अत्याचारी, विलासप्रिय नकली चेहरों तथा मुखौटों को सत्ता मिली, जनता के हिस्से लगी बेबसी, कातरता, गरीबी और उदासीनता।''[28] एक तो सैन्य बजट ने प्रत्यक्ष करों को बढावा दिया तथा भारी उद्योगों की स्थापना की इच्छा की, औद्योगीकरण ने निजी फैक्टर में मुनाफा

बढाया। इससे काला धन भी बढा और भ्रष्टाचार में व्यापकता भी आई। इस नवसमृद्ध ने नैतिकता को उतार फेंका और नयी पीढी पश्चिमी रंग में रंग गयी। नगरीकरणी ने वैयक्तिक विघटन को गति दी। महानगरों की विपुल जनसंख्या ने बेकारी और निर्धनता को बढावा दिया, इस प्रकार स्पष्ट होता है कि वर्तमानकालीन स्थितियों में राष्ट्र, सरकारी कर्मचारी और मध्यमवर्ग के सभी मूल्य ध्वस्त हो गये। इन परिस्थितियों का घातक प्रभाव हमारी सामाजिक संरचना पर हुआ। सामाजिक परिवर्तन के इस क्रम में गाँवों की संस्कृति तेजी से समाप्त होने लगी, हमारे पारम्परिक जीवन- मूल्य ध्वस्त होने लगे। हमारी सामाजिक संस्थाएँ चरमरा उठीं। सम्बन्धों के लक्षण का प्रभाव परिवार के विघटन के रूप में प्रकट हुआ। इसीलिए इस युग के रचनाकारों ने परम्परागत गलित मूल्यों से मुक्ति पाकर नये मूल्यों को अपनाना चाहा जिनके द्वारा वह समता पर आधारित शोषण मुक्त और प्रगतिशील अर्थव्यवस्था की स्थापना कर सके। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण जीवन दृष्टि में आमूल परिवर्तन दिखाई देने लगा इस संदर्भ में ड़ॉ. भैरुलाल गर्ग अपना मत प्रकट करते है- ''अब तक की स्थिति से स्पष्ट है कि व्यक्ति स्वातंत्र्य, बंधुत्व, मानव समानता, न्याय, प्रेम, यौन सम्बन्ध ही वे मूल्य हैं जिनकी ओर नये साहित्यकार का ध्यान आकर्षित हुआ है।''[29]

हम यही कह सकते हैं कि साहित्य में चित्रित मूल्यों की चर्चा मानवजीवन को सही रूप में हमारे सामने प्रतिबिम्बित करती है। भारतीय संस्कृति मूल्यों पर प्रतिष्ठित है। मनुष्य ने अपनी चिन्तन शक्ति द्वारा समस्त मानव जाति के कल्याण के लिए दया,

क्षमा, शान्ति, परोपकार, सेवा, समर्पण, त्याग उदारता आदि मूल्यों का आविष्कार करते हुए 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के रूप में शाश्वत मूल्यों की निर्मिति की है। उसी लक्ष्य में एकमात्र मानव जाति का कल्याण निहित है। साहित्य में इन्हीं मूल्यों की चर्चा होती है। साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति जन्य संज्ञा में ही 'हितेन सह सहितम्' कहकर उपर्युक्त मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है। 'मूल्य' शब्द मनुष्य के बाह्य जगत से लेकर आन्तरिक जगत के सत्य पक्ष का उद्घाटक है। विविध विद्वानों ने अपने दृष्टिकोण से मूल्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है। सामान्यतः मूल्य शाश्वत होते हैं। वह एक सर्वसम्मत व्यवहार है जिन्हें अपनाकर कोई भी व्यक्ति, जाति- समाज-राष्ट्र अपने सार्वजनिक जीवन को सुन्दर बनाता है। मूल्यों की विशेषता है कि कुछ मूल्य शाश्वत हैं तो कुछ कालसापेक्ष हैं। भारतीय दर्शन में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की चर्चा की गयी है वे ही जीवनमूल्य हैं। आज के वर्तमान युग में इन्हीं मूल्यों के अन्तर्गत अन्य विविध मूल्यों को जैसे सौन्दर्यात्मक, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक और राजनीतिक मूल्यों को रखा गया हैं। मानव जीवन से सम्बन्धित, मानवजीवन के लिए महत्वपूर्ण यह मूल्य काल और स्थान के अनुसार परिवर्तित होते हैं। सामाजिक विघटन के साथ यह मूल्य बनते हैं- टूटते हैं फिर भी इनका महत्व अक्षुण्ण है। हर एक समाज अपनी आवश्यकता के अनुसार इनका निर्माण करता है। भौतिक विकास आधुनिक नूतन जीवन दृष्टि, पाश्चात्य विचारप्रणाली के परिणामस्वरूप मूल्यों में परिवर्तन हो रहे हैं। विविध विद्वानों ने अपने दृष्टिकोण से

मूल्यों का वर्गीकरण किया है। जिनमें सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक आदि मूल्य हैं। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है, इसीलिए मानव जीवन का यथार्थ चित्रण उसमें होने उपर्युक्त मूल्यों की चर्चा साहित्यकार करता है। अतः मानवजीवन से सम्बन्धित जीवन मूल्यों की चर्चा भी साहित्य में होती है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय समाज में विशेष रूप से मानवीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में तीव्र परिवर्तन हुआ, विशेषकर जितनी तीव्रता से औद्योगिक एव वैज्ञानिक विकास हुआ उसका प्रभाव सामाजिक संगठनों पर पड़ना स्वाभाविक था। औद्योगिक विकास की जो तकनीक पश्चिम से आयात की गयी, उसके साथ-साथ हम पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति से भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। परिणामस्वरूप हमारे पारिवारिक और सामाजिक जीवन में व्यापक स्तर पर परिवर्तन हुआ। भारतीय जनमानस में जो रूढिवादी संस्कार विद्यमान थे, उनका परम्परागत स्वरूप भी निखरने लगा और परिस्थितियों के अनुसार उनकी अर्थवत्ता भी महत्वहीन लगने लगी। स्थिति अन्धानुकरण की थी। हम न तो अपने परम्परागत संस्कारों से पूर्णतः कट सके और न ही पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति को उसकी सम्पूर्णता में आत्मसात कर सके इसी के परिणामस्वरूप सामाजिक स्तर पर स्थापित मूल्य भी टूटने लगे और नए मूल्यों का कोई स्पष्ट रूप उभर कर सामने नहीं आ पाया। बढते हुए पूँजीवाद, आर्थिक विषमता और दबाव के कारण भौतिक मूल्य ही मानवीय जीवन के चरम- मूल्यों के रूप में उभरने लगें। जिससे मानवीय जीवन के रागात्मक तत्व शुष्क बौद्धिकता के कारण

विलीन होने लगे। मूल्यों के इन परिवर्तित रूपों ने पारिवारिक मूल्यों को निश्चित रूप से प्रभावित किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मनुष्य अनिवार्य रूप से अपने परिवेश में बाँधा हुआ है। मनुष्य का आन्तरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व उसके परिवेश से प्रभावित होता है, उसी से उसका व्यक्तित्व बनता है। प्राचीन काल में धर्म मानव मूल्यों का स्रोत था, किन्तु आधुनिक काल में वैज्ञानिक दृष्टि एवं औद्योगिक प्रगति ने धर्म के महत्व को कम करके मानव चेतना को ही मूल्यों का प्रमुख स्रोत बना दिया है, इस क्रम में नये मानव मूल्य अर्जित किये गये हैं। मूलतः सभी मूल्यों की सृजन मनुष्य की चेतना करती है, कुछ मूल्य अपना स्थायी महत्व रखते हैं और देशकाल की सीमाओं से ऊपर होते हैं वे 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' जो शाश्वत मूल्य कहलाते हैं, दूसरी ओर कुछ मूल्य कालसापेक्ष होते हैं और कुछ देश सापेक्ष। यह मूल्य समाज की मान्यताओं और धारणाओं के अनुसार बनते-मिटते और बदलते रहते हैं। पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, आध्यात्मिक क्षेत्रों में निहित मूल्य समयसापेक्षता के कारण परिवर्तित हुए हैं। इसलिए यहाँ इन मूल्यों के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया है।

2.8.1 पारिवारिक मूल्य

स्वातन्त्र्योत्तर काल में विशेष रूप से साठोत्तरी काल में तीव्र गति से भारत में औद्योगिक और भौतिक विकास हुआ है। उसी के प्रभाव से मानवीय संबन्धों के मूल

में भी उतनी ही जटिलताएँ उत्पन्न हो गयी। नगरों और महानगरों में बढ़ते हुए औद्योगिक विकास जीवन की भागदौड़, बढती हुई जनसंख्या और मँहगाई एवं मूल्य विघटित राजनीति ने पारिवारिक विघटन को जन्म दिया, परम्परागत संयुक्त परिवार टूट कर एकांकी परिवारों में परिणत होने लगे। कर्तव्यपरायणता के आधार पर संयुक्त परिवार में कई पीढियों के सदस्य एक दूसरे के साथ बंधे रहते हैं परन्तु जब सम्बन्धों की प्रगाढता टूटने लगती है तब सौहार्द्र, बंधुत्व, त्याग, समर्पण, सेवा आदि मूल्य भी दरकने लगते हैं।

पारिवारिक मूल्यों के अन्तर्गत ममता, स्नेह, प्रेम, वात्सल्य, सहानुभूति, उदारता, बंधुत्व साहचर्य, आत्मीयता, विश्वास, एकनिष्ठता, त्याग, समर्पण आदि विविध मूल्य आते हैं। इन्हीं मूल्यों की नींव पर पारिवारिक रिश्तों की डोर मजबूती से बंधी रहती है परन्तु औद्योगिकरण, पाश्चात्य प्रणाली का प्रभाव, भोगवादी दृष्टि, विलासी भौतिकवादी प्रवृत्ति स्वार्थन्धता आदि विविध कुप्रवृत्तियों ने पारिवारिक मूल्यों को तोड़ दिया है। इसीलिए वर्तमान युग में संयुक्त परिवार तो क्या एकल परिवार भी टूटने लगे हैं।

एक समय था पिता अपनी संतानों के सामने झूठ का साथ न देने का और सच्चाई के साथ चलने का आदर्श रखते थे इसीलिए चापलूसी, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी को हेय समझा जाता था, परन्तु वर्तमान युग में आम आदमी को आर्थिक समस्या ने

घेर लिया है साथ ही साथ सिफारिश के बिना किसी भी क्षेत्र में मनुष्य अपना काम नहीं कर सकता जिससे सत्य, विश्वास आदि मूल्य टूटने लगे है।

संबंन्धों के परम्परागत रूप को नकारा जा रहा है। मूल्य संघर्ष का प्रभाव मनुष्य के आत्मिक, पारिवारिक सम्बन्धो पर पड़ा। आज मानवीय रिश्ते उसी रूप में मान्य नहीं रहे जैसे पहले थे। संयुक्त परिवार के विघटन और रोजी-रोटी की तलाश में परिवार के सदस्यों का बाहर आकर बस जाना आदि के परिणामस्वरूप परिवार के सदस्य अपनी छोटी-छोटी इकाइयों तक ही अपने को सीमित रखने लगे। मानवीय संवेदना पर अर्थ का स्वार्थ हावी होकर बहुत सारे आत्मिक सम्बन्धों को बेमानी या बेमतलब का बोझ ढोने की रस्म सी बना रहा है। माँ- बाप, पिता- पुत्र, पुत्री, भाई-बहन, पति- पत्नी, भाई- भाई आदि के बीच अनाम दूरियाँ आ गयी, जिसके कारण ये सम्बन्ध दरकने लगे। आज व्यक्ति के जीवन में एक प्रकार का संत्रास, अकेलापन व अजनबीपन का बोध जागृत हुआ है।

आज विवाह का आधार प्रेम या भावात्मक संवेदना युग- युग के सम्बन्ध की आस्था या विश्वास नहीं है अपितु उसे मात्र एक सामाजिक समझौता, साथ रहने की आवश्यकता भर समझा गया है।

आधुनिक समाज में विवाह, प्रेम और सेक्स की व्याख्याएँ नया अर्थ पा रही है। पहले यह आम धारणा थी कि जिस व्यक्ति से व्याहे गये हैं, उसी से प्यार करते रहो उसी से ही भोग और निर्माण भी। विवाह पूर्व या उसके बाद किसी स्त्री या पुरुष का

किसी दूसरी स्त्री या पुरुष के साथ प्रेम संबन्ध सहे नहीं जा सकते थे। परन्तु स्वतन्त्र-विचार, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, शिक्षा का प्रचार-प्रसार, स्वतन्त्रता की भावना आदि कारणों से विवाह, प्रेम और सेक्स की स्थापित धारणाओं में अन्तर आ रहा है। विवाह को बन्धन के रूप में स्वीकारने के लिए आधुनिक स्त्री-पुरुष तैयार नहीं हैं। विवाह और उसके साथ जुड़ी पवित्रता, प्रामाणिकता आदि की व्याख्याएँ बदल रही हैं आज यह जरूरी नहीं माना जाता, एक बार विवाह हो जाए तो उसे जन्म-जन्मान्तर तक निभाते रहो। प्यार की परिणति विवाह में होना जितना सहज है, उतना ही सहज है अनबन की परिणति विवाहविच्छेद में हो, इस स्थिति में पति- पत्नी दोनों भी भावनात्मकता से ऊपर उठ रहे हैं। कहीं भी दूसरों पर दोषारोपण नहीं किये जाते और न कहीं रोने-धोने और कन्वींस्ड कराने की कोशिशें। विवाह के साथ जुड़ी प्रामाणिकता, पूर्व पवित्रता आदि बातें वर्तमान समाज के सन्दर्भ में बिल्कुल बकवास लगती हैं।

विवाहित होते हुए भी कभी-कभी अन्य स्त्री या पुरुष से सम्बन्ध रखने में स्त्री-पुरुष परिवर्तित नैतिक मान्यताओं के कारण संकोच नहीं करते। पत्नी के साथ बिना तलाक लिये ही कोई पुरुष दूसरी स्त्री के साथ रहने लगता है ऐसा करते समय कहीं कोई वर्जनाएँ या नैतिक मूल्य आड़े नहीं आते।

भारतीय संस्कृति में नारी के लिए विनय, लज्जा, मर्यादा आदि मूल्य आवश्यक माने गये थे उन्हीं मूल्यों को यहाँ ललकारा गया है। विचारधारा का विभाजन प्राचीन

मूल्यों एवं नवीन मूल्यों के आधार पर ही किया जा सकता है। जब मूल्यों के बीच संक्रमण की स्थिति निर्माण होती है तब मनुष्य उनमें स्पष्ट रूप से विभाजन नहीं कर पाता। आज भी जीवन मूल्य इतने परिवर्तित नहीं हो रहे हैं जितना हम समझ रहे हैं, इसीलिए मनुष्य दोनों के बीच द्वन्द्व की स्थिति से गुजर रहा है।

नैतिक प्रतिमान, जीवनमुल्य और परिस्थितियों के परिवर्तन के परिणामस्वरूप स्त्री- पुरुष सम्बन्धों में एक परिवर्तन उभरना सहज स्वाभाविक था। जब से नारी ने आत्मनिर्भर हो आर्थिक स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर होना प्रारम्भ किया तब से वैवाहिक तथा विवाहेतर सम्बन्धों में एक नवीन चेतना का आगमन हुआ। नैतिकता के नए भावबोध से यौनशुचिता की संकल्पना को त्यागकर काम को दैहिक आवश्यकता पर स्वीकार किया गया। यदि पुरुष कई स्त्रियों से प्रेम सम्बन्ध को स्थापित कर सकता है तो नारी भी कई पुरुषों से प्रेम-सम्बन्धों को स्थापित कर सकता है । पुरुष क्षेत्रों में नारी के पदार्पण से स्त्री- पुरुष सम्बन्धों में अप्रत्याशित परिवर्तन आया है। कहीं नारी ने स्त्री- पुरुष के दुहरे नैतिक मान्यताओं को चुनौती दी है, कहीं उसने विवाह और प्रेम सम्बन्धों में नए मूल्यों को स्वीकारा है।

मूल्यों के संकट की स्थिति में भी भारतीय समाज में परम्परा से प्राप्त मूल्य अनेक रूपों में आज भी विद्यमान हैं।

मूल्य संक्रमण के आधुनिक युग में भारतीय नारी पुराने संस्कारों से जुड़ी है। वह नारी के जीवन में पुरुष होना आज भी आवश्यक मानती है। उसके सहारे के बिना

वह स्त्री के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकती। जब पति द्वारा किये गये अपमान, उपेक्षा और अत्याचार के बावजूद अपनी ममता, स्नेह की पवित्रता बनाये रखती है यह भारतीय संस्कृति की देन है

विवाह और प्रेम सम्बन्धी जिस प्रकार मूल्य परिवर्तन की स्थिति आधुनिकता के कारण उत्पन्न हो गयी है उसी प्रकार अब 'मातृत्व' सम्बन्धी मूल्यों में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। नारी के जीवन का सबसे सुन्दर पहलू उसकी 'माता' बनने की स्थिति में होता है। मातृत्व को प्राप्त करने के लिए नारी असहनीय यातनाएँ सहने के लिये, भुगतने के लिए तैयार होती है परन्तु आज उसी नारी के दृष्टिकोण में परिवर्तन उपस्थित हुआ है।

आधुनिक दृष्टि ने नारी की मातृत्व की संवेदनाओं को कुंद कर दिया है। 'टेस्ट ट्यूब बेबीज' युग में नारी मातृत्व के गुणों को किस सीमा तक सुरक्षित रख पायेगी कहना बहुत कठिन है। आज अर्थप्रधान युग में माता-पिता भौतिक समृद्धि और सुख के साधन आयात करने केलिए रात-दिन हबेड़ा- धबेड़ी में लगे लगता हैं। पैसा जुटाने में तत्पर हैं, तब आधुनिक नारी को मातृत्व एक भार सा लगता है। व्यक्ति स्वातन्त्र्य के पक्ष में स्थित नारी केलिए मातृत्व एक बोझ है।

चाहे हम कितने भी अपने आप को आधुनिक माने, पाश्चात्य सभ्यता की परम्पराओं का पालन करते हुए आधुनिक बनकर विवाह के बिना पति-पत्नि का जीवन व्यतीत करें तो भी यह समाज कुंवारा मातृत्व स्वीकार नहीं करता। चाहे

स्थापित मूल्यों में परिवर्तन निश्चित है परन्तु स्थायी मूल्यों की शाश्वतता अटल है। सामाजिक नैतिकता उन मूल्यों को भंग होने नहीं देती। मातृत्व में विवाह पावित्र्य का मूल्य शाश्वत माना जा रहा है, उसे नकारने की क्षमता पढे-लिखे कमाऊ स्त्री-पुरुषों मे नहीं है।

मानव समाज की संस्कृति और सभ्यता जीवन मूल्यों पर टीकी है इसीलिए मानव पशुओं से श्रेष्ठ है। जीवन मूल्य मनुष्य के सामाजिक संगठन को बनाये रखते हैं और व्यक्तिगत जीवन को सुरक्षा प्रदान करते हैं। झूठ न बोलो, चोरी न करो, धर्म के अनुसार करो, हिंसा न करो, प्रेम व्यवहार करो, दया, करुणा यही सशक्त मूल्य हैं और इनमें ही नैतिकता के नियम जुड़े हैं।

2.8.2 सामाजिक मूल्य

समाज और परिवार इनका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। परिवार, समाज की महत्वपूर्ण इकाई है, परिवार का प्रत्येक सदस्य पूरे समाज का एक महत्वपूर्ण अंग होता है। विज्ञान और उद्योगजनित पूँजावादी संस्कृति से उत्पन्न व्यक्तिवादी मनोवृत्ति, नारी का आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर और स्वतंत्र होना, नयी-पुरानी पीढी का संस्कार और मूल्यगत टकराव एवं आर्थिक अभावों और दबावों से उत्पन्न परम्परागत संयुक्त परिवार विघटित होकर एक इकाई के रूप में उभरने लगे जिनका आधार सामूहिक हितों और रुचियों पर न होकर वैयक्तिक रुचियों पर निर्मित होने लगा। पारिवारिक विघटन

के कारण पिता आदरणीय और अनुभवी आदमी का ही प्रतीक नहीं रहा। परम्परा गौरव की वस्तु नहीं रही, विश्वास अर्थहीन हो गया, बहन और भाई का रिश्ता राखी का नहीं रह गया। आदमी और औरत का समर्पण का सम्बन्ध ही बदल गया। परिणामस्वरूप पारिवारिक सम्बन्धों में मधुरता और सरसता के स्थान पर परस्पर कटुता, तनाव, घुटन और आक्रोश की स्थिति उत्पन्न होने लगी।

राजेन्द्र यादव जी ने संयुक्त परिवार की विघटन की स्थिति के संदर्भ में संकेत दिया है- ''संयुक्तपरिवार की ऐतिहासिक आवश्यकता समाप्त हो चुकी है, स्वयं प्रेमचंद को यह समझने में कम समय नहीं लगा, शरदचन्द्र तो जिन्दगीभर पारिवापरिक गलतफहमियों की दीवारों को आँसुओं की बाढ़ से ही बहाने की कोशिश करते रहे।''[30] परिस्थितियों की जटिलता के कारण पारिवारिक विघटन की यह स्थिति निरन्तर गंभीर होती हुई साठोत्तरी हिन्दी कहानी में पारिवारिक मूल्य-बोध की दृष्टि से स्वाभाविक यथार्थ रूप में चित्रित हुई है। विज्ञान और उद्योगजनित वर्तमान आधुनिक जीवन में उत्पन्न अकेलापन, घुटन, निराशा, अवसाद आदि की भावनाओं को साठोत्तरी महिला लेखिकाओं ने तटस्थ भाव से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। लेखिकाओं ने संयुक्त परिवार के आधारमूल्यों की टूटन की पीड़ा को समझा है, वहीं पर स्वतन्त्र भारत के नागरिक के रूप मे प्रत्येक व्यक्ति की महत्वाकांक्षाओं को भी संवेदनात्मक स्तर पर रेखांकित किया है।

वर्तमान युग में नयी पीढी के रहन-सहन, सोच-विचार आदि में व्यापक परिवर्तन दिखायी देता है जो पुरानी पीढी के दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न है। नयी पुरानी पीढी के दृष्टिकोण में मूल्यगत टकराव के कारण व्यावहारिक और वैचारिक मतभेद है। पारिवारिक सम्बन्धों पर भौतिवादी दृष्टिकोण इतना अधिक हावी होता जा रहा है कि वैयक्तिक एकाधिकार के कारण एक भाई के घर से बाहर रहने के कारण उसके अधिकारों को भी छीनने की चेष्टा की जाती है। भाई-भाई के मध्य पितृ सम्पत्ति में दूसरे का हक दबाने का भाव पैदा होता जा रहा है। आर्थिक समृद्धि की कसौटी पर निर्मित होने वाले पारिवारिक सम्बन्धों में खून के रिश्ते झूठे पड़ने लगे हैं।

किसी भी समाज की संस्कृति का अध्ययन उस समाज में प्रचलित मानव मूल्यों के आधार पर संभव है। सामाजिक मूल्य सम्पूर्ण संस्कृति एवं समाज को अर्थ एवं महत्ता प्रदान करते हैं। सामाजिक मूल्यों का केन्द्र जनकल्याण की धारणा है। इस कल्याण भावना को ध्यान में रखते हुए सरकार कानून बनाती है। समाज के पहियों को सुचारु रूप से गतिशील रखना व्यक्ति तथा समाज के बीच सन्तुलित वातावरण की पारस्परिक सूझ- बूझ स्थापित करना सामाजिक मूल्य का काम है।

सामाजिक जीवन में कुछ सामान्य आदर्शों को प्रतिष्ठित करने में मानवीय मूल्यों का योगदान रहा हैं। मानव समाज के कल्याण के लिए इन मूल्यों का संरक्षण आवश्यक है। मानव समाज को संगठित करने का कोई और उपाय नहीं, इन मूल्यों के आधार पर सभ्यता तथा संस्कृति का गठन होता है, नये जीवन की सृष्टि होती है।

आधुनिक युग में सामाजिक मूल्यों और मान्यताओं में तीव्र परिवर्तन दिखाई देता है, कई परम्परागत मूल्य टूट रहे हैं और नये जीवन मूल्य उसका स्थान ले रहे हैं। यह तो शाश्वत सत्य है कि सामाजिक मूल्य सामाजिक जीवन का रक्षा कवच है। भारतीय समाज हर समय उदात्त मानवी मूल्यों का आग्रही रहा है। मानवता, दया, करुणा, श्रद्धा, सहृदयता, परोपकार, त्याग आदि को अपनाने वाले व्यक्ति आज भी समाज में सम्मान प्राप्त करते हैं। अतः चाहे काल के कपटताओं से, समय की गतिशील तीव्रता से एवं विविध बाह्य प्रभावों से मूल्य परिवर्तित हो रहे हैं तो भी मूल्यों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया जा रहा है।

पारिवारिक स्तर पर मूल्य विघटन के अन्तर्गत संयुक्त परिवार का विघटन आत्मीय पारिवारिक सम्बन्धों में उत्पन्न मूल्यहीनता, स्त्री-पुरुष सम्बन्धी विविध रिश्तों के पहलुओं में जैसे माता-पिता, पुत्र, भाई-भाई, भाई-बहन, बहन-बहन, पति-पत्नी आदि में उत्पन्न मूल्य परिवर्तन की स्थिति, विवाह के क्षेत्र एवं प्रेम सम्बन्धी मूल्यों की धारणा इनमें मूल्यहीनता या युगसापेक्षता के अनुसार परिवर्तित मूल्यों का जायजा हमने पारिवारिक के अन्तर्गत लिया है।

मानव जीवन में मूल्यों का महत्व निर्विवाद है। वस्तुतः मानव समाज मूल्यों का संगठन एवं संकलन हैं। मूल्यों के द्वारा ही मानव अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं एवं आदर्शों को प्राप्त करता है। मूल्य निराधार अथवा कपोल-कल्पित नहीं होते, वे किसी न किसी रूप में समाज के द्वारा स्वीकृत रहते हैं, उनका एक निश्चित स्वरूप होता है।

2.8.3 आर्थिक मूल्य

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात जनता ने आर्थिक सम्पन्नता के जो सपने संजोये थे वे शीध्र ही टूटते चले गये। आजादी मिले पचास साल हो गये परन्तु आम सामान्य आदमी की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी। 'अर्थ' जीवन की धुरी बन गया और अभावों ने उसके जीवन को घोर निराशा से भर दिया। प्रत्येक युग का सामाजिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन किसी सीमा तक आर्थिक मूल्यों से प्रभावित रहा है। 'अर्थ' पर ही समाज का विकास आधारित है, यह एक सर्वमान्य सत्य है परन्तु वर्तमान युग में 'अर्थ' को जितना महत्व प्राप्त है इससे पहले उतना प्राप्त नहीं हुआ था।

आर्थिक मूल्य अर्थ केन्द्रित समाज में जन-जीवन के उतार-चढ़ाव का कारण होता है। किसी भी व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा का निर्णय आज उसकी आर्थिक स्थिति में निश्चित होता है। तात्पर्य, आज अर्थ, व्यक्ति तथा समाज के विकास का मेरुदण्ड़ बन गया है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् देश की अर्थव्यवस्था पर पूँजीवादी शक्तियों का ऐसा शिंकाजा कसा जा रहा है कि जनसाधारण की अभावग्रस्त स्थिति में जनता बेरोजगारी, मँहगाई, भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी का शिकार होती चली गई।

भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अर्थ एक आवश्यक साधन है। वैज्ञानिक, औद्योगिक विकास और भौतिक सुख-सुविधाओं के प्रति बढ़ते आकर्षण से

अर्थ प्राप्ति ही मनुष्य का चरम लक्ष्य बनता जा रहा है। समाज में प्रतिष्ठा और सम्मान की कसौटी मानवमूल्य न होकर केवल भौतिक समृद्धि होती जा रही है। हमारे सभी सामाजिक सम्बन्धों और पारिवारिक रिश्तों पर अर्थतन्त्र हावी हो गया है। आत्मीय रिश्तों की पहचान और परख तथा उन सम्बन्धों के निर्वाह में अर्थ-प्रधान दृष्टि प्रमुख हो जाने से आज सम्बन्ध निभाये नहीं ढोये जा रहे हैं। कभी-कभी मन और आत्मा इन सम्बन्धों को जीने के लिए ललकते हैं किन्तु आर्थिक विविशताएँ उनको रोक देती हैं। दूर-दराज के सम्बन्धों यथा-बुआ, चाची, मौसी, मामा आदि के साथ ही यह स्थिति नहीं है अपितु अत्यन्त निकट के पति-पत्नी, बहन-भाई, भाई-भाई, माँ-बाप, पिता-पुत्र आदि के सम्बन्धों में भी यह 'अर्थ का विषधर' कुडली मारे बैठा है। साठोत्तरी कहानी ने इन सब सम्बन्धों के बीच आयी आर्थिक विवशताओं का बहुत सशक्त रूप में चित्रण किया है।

आर्थिक संकट ने माता-पिता तथा सन्तान के पारस्परिक सम्बन्धों के सन्तुलन को नया रूप दिया है। आर्थिक अभावग्रस्तता ने शिष्टाचार और नफरत को बुरी तरह सोख लिया है।

जिस बहन ने अपने भाई-बहनों के लिए सब कुछ किया उसी बहन के बारे में वे केवल पैसे की भाषा में बातें करते हैं जैसे बहन कुछ नहीं पासबुक ही सब कुछ है। आज यदि कहीं सबसे ज्यादा बिखराव आया है, तो पारिवारिक सम्बन्धों में। आज

सम्बन्ध भावनात्मक नहीं रहे। त्याग एवं आदर्श की जगह ये सम्बन्ध ठोस आर्थिक धरातल पर आ टिके हैं।

परन्तु माता एवं वात्सल्य की साकार मूर्ति में भी जब 'अर्थ' के कारण अपने वात्सल्य एवं करुणा, ममता के मूल्य 'अर्थ' के लिए गिरवी रखती है तो निश्चित ही अर्थमूल्य की परिवर्तन की स्थिति आने वाले युग में आत्मीय सम्बन्धों को खत्म करने का खतरा बनकर, उपस्थित हो गयी है यह कहना समीचीन होगा।

जीवन की विभिन्न समस्याएँ जटिलतर हो जाने से और अर्थमूलक संस्कृति के उदय से व्यक्ति में अर्थ संचय की प्रवृत्ति प्रबल होती गयी है। अर्थ-जो भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र रहा है। वह वर्तमान में मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र रहा है। वह वर्तमान में मानवीय जीवन का साध्य बनता जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप मानवीय सम्बन्धों में बिखराव और अलगाव की स्थिति उत्पन्न होती जा रही है। रोजगार के क्षेत्र में स्वार्थ, भ्रष्टाचार, पक्षपातपूर्ण, अनैतिक प्रवृत्तियों के उत्पन्न होने से सामाजिक मूल्य विघटित हो रहे हैं। नौकरी के क्षेत्र में नारियों के पदार्पण से बेरोजार युवा वर्ग में निराशा, घुटन एवं कुण्ठाएं निर्माण हो रही हैं।

भाई-बहन, पति-पत्नी, माता-पिता-पुत्र, माता-पिता-पुत्री सम्बन्धों में कटुता, तनाव, अलगाव, दिखावटीपन, स्वार्थ आदि दुष्प्रवृत्तियाँ अर्थमूल्य के कारण उत्पन्न हुई हैं।

दया, ममता, करुणा, मातृत्व-पितृत्व, भातृत्व, त्याग, समर्पण आदि मूल्य विघटित हो गये हैं। संवेदना एवं भावनाओं को कुचल दिया है। संक्षेप में अर्थमूल्य ने मानव समाज को शापग्रस्त एवं मूल्यहीन बनाने में योगदान दिया है ।

2.8.4 नैतिक मूल्य

'नैतिक' शब्द का अर्थ आचरण से सम्बन्धित है। नैतिक शब्द 'नीति' से बना है। समाज, धर्म और राज्य द्वारा निर्मित नियमों के अनुकूल चलना ही नीति है और उन नियमों के अनुकूल आचरण से सम्वन्धित मूल्य ही नैतिक मूल्य है। दया, त्याग, पवित्रता, सत्य आदि शाश्वत मूल्यों को नैतिक मूल्य कहा जा सकता है। समाज, राज्य तथा धर्म के द्वारा स्वीकृत व्यवहार ही मूल्य के अन्तर्गत आते हैं।

भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों के प्रति विशेष आदर रहा है। यही कारण है कि समाज और शासन के प्रति निष्ठावान रहने की परम्परा भारतीय जन में विशेष रूप से विद्यमान है। हमारे यहाँ आचरण की पवित्रता को अधिक महत्व दिया गया है।

मूल्य के दो भेद हैं एक शाश्वत मूल्य और दो समाज सापेक्ष जीवन-मूल्य। शाश्वत जीवनमूल्य ये सर्वमान्य आचरण सिद्धान्त के अन्तर्गत आते हैं। ये मूल्य किसी भी समय और परिस्थिति में नहीं बदलते। वस्तुतः नैतिक मूल्यों का जन्म ही सामाजिक आवश्यकता के साथ हुआ है। जीवन मूल्य विकसित होने के बाद विश्व नैतिकता के रूप में स्वीकार किया गया जिन्हें दूसरी ओर समाज सापेक्ष जीवन मूल्य रूढिवादी

व्यवहार को चुनौती देते हैं। ये जीवन मूल्य युग और स्थितियों के अनुसार बदलते दिखाई देते हैं, जो मूल्य एक युग में नैतिक लगते हैं, वे ही दूसरे युग में अनैतिक लगने लगते हैं। ये मूल्य समाज तथा देश के अनुसार बदलते दिखाई देते हैं। जो बात एक देश में नैतिक मानी जाती है, दूसरे देश में वही बात अनैतिक मानी हैं। एक समय था जब वर्ण व्यवस्था सर्वमान्य सामाजिक मूल्यों में परिगणित होती थी, पर आज वह व्यर्थ और अस्तित्वहीन हो चली है, किन्तु भारतीय समाज में इन्हें आज भी वर्जित माना जाता है, इसी प्रकार विदेशों में विवाह विच्छेद जितना सरल और समाज सम्मत है, उतना भारत में नहीं । मूल्यगत परिवर्तन आकस्मिक नहीं होता। व्यक्ति मूल्यों का परम्परा से ग्रहण करता है। मूल्य वस्तुतः एक प्रवाह की तरह होते हैं जिनमें नई धाराएँ आकर सम्मिलित होती रहती हैं, और कहीं पुरानी धाराएँ इधर-उधर घिरकर सूख जाती हैं। मूल्य बदलते रहते हैं पर मूल्य प्रवाह अक्षुण्ण बना रहता है।

नैतिकता का सम्बन्ध मानव के चरित्र और आचरण में होता है। समय परिवर्तन के साथ-साथ नैतिकता सम्बन्धी मानदण्ड भी परिवर्तित होते रहते हैं। नैतिक मूल्यों के मूल में व्यक्ति के पारस्परिक संस्कार और मूल्य भी निहित होते हैं जो उस संस्कृति के द्योतक होते हैं।

'दहेज' जैसी सामाजिक कुरीतियों से मुक्ति पाने और भावात्मक एकता का निर्माण करने के लिए अन्तर्जातीय विवाहों की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता। ''अन्तर्जातीय विवाह से वंशभेद, जातिभेद, भाषा-भेद आदि को मिटाकर राष्ट्रीय एकता

की स्थापना में मदद मिल सहती है। इससे आदमी के बीच दूरियों को कम किया जा सकता है।''[31] विवाह मूल्य में आया परिवर्तन निश्चित ही सामाजिक स्वास्थ्य के लिए जरुरी है।

एक बात सही है अब इस सत्य को स्वीकारना ही होगा कि परम्परागत नैतिक मूल्य टूट रहे हैं। पग-पग झूठ बोलना, दूसरों को फँसाना, छल प्रबन्ध करना यह आम बात हो गयी हैं।

नैतिक मूल्यों का मूलाधार स्वार्थ का परित्याग है। इस उदात्त वृत्ति के अन्तर्गत सभी नैतिक मूल्य आ जाते हैं। 'परिवार' समाज का सबसे छोटा घटक है। अतः स्वार्थत्याग का सिलसिला परिवार से आरम्भ होता है। परिवार नैतिकता की पाठशाला है, पिता, माता, भाई, बहन अपने परिवार के लिए वैयक्तिक स्वार्थ को इच्छा न रखकर स्वयं को समर्पित करती है।

अतः हमें यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान युग की दुःखान्तिका आज का उभरता मूल्य संकट हैं। परम्परागत जीवनमूल्य' नये परिवेश की आवश्यकता के अनुसार बदल रहे हैं। परिवर्तन की इस प्रक्रिया ने शाश्वत मूल्यों को भी प्रभावित किया है। वर्तमान आधुनिक परिवेश में विघटित नैतिक मूल्यों के बीच नैतिक जीवन जीने के बाद व्यक्ति इस स्तर पर पहूँच सकता है कि मनुष्य के सामने मूल्य आदर्श रूप में नहीं रहे हैं। समाज में बढ़ती जा रही अनैतिकता, वैयक्तिकता, स्वार्थपरता और मूल्यहीनता

के कारण उत्पन्न नैतिक जीवन जीने वाले मनुष्य की पीड़ा, छटपटाहट, घुटन, आक्रोश और विद्रोह ही सारे नैतिक मूल्यों को तोड़ने पर विवश कर देते हैं।

नैतिक मूल्यों का क्षेत्र बहुत व्यापक है, मनुष्य का सारा व्यवहार जो समाज को सुन्दर बनाता है, नैतिक मूल्यों के अन्तर्गत आता है। मूल्य विघटन के इस संक्रमणकालीन स्थिति में भी नारी एवं पुरुष द्वारा नैतिक मूल्यों को सुरक्षित रखने का प्रयास भी साठोत्तरकालीन साहित्यकारों की कहानी साहित्य में हुआ है। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब हैं। अतः समाज में जो जो घटित होता है उस का सही जायजा लेना साहित्यकार का दायित्व होता है। हमारे साहित्यकारों ने यह दायित्व बखूबी से निभाया है इसलिए पारिवारिक, यौन-सम्बन्ध, सामाजिक आदि विविध स्तरों पर निहित नैतिक मूल्य, संक्रमित नैतिक मूल्य, विघटित नैतिक मूल्यों की चर्चा विभिन्न कहानियों के माध्यम से की गयी है।

एक ओर स्त्री पुरुष सम्बन्धों के वैवाहित जीवन में नैतिक मूल्यविघटन की गंभीरता का विवेचन लेखकों ने किया है तो दूसरी ओर आज भी स्त्री और पुरुष विशेष रूप में स्त्री त्याग, करुणा, ममता, वात्सल्य, समर्पण, पतिनिष्टा, पातिव्रत्य आदि नैतिक मूल्यों के प्रति प्रामाणिक है। आज भी पढ़ी-लिखी नारी में नैतिक मूल्यों का साथ नहीं छोड़ा। अतः यह समाज निश्चित ही ऐसी नारियों की मूल्यनिष्ठा के बल पर अपना स्थायित्व मूल्यों के आधार पर सुरक्षित से अबाधित रखेगा। क्योंकि समाज का 'स्थायित्व' आदर्श नैतिक मूल्यों के नींव पर स्थित है।

आज के बदलते परिवेश में चिरंतन मूल्य व्यर्थ और अस्तित्वहीन हो गए हैं। भारतीय संस्कृति की उदात्त रुढियाँ छिन्न-भिन्न होते जा रही है। उनका स्थान प्रगतिवादी परम्पराओं में लिया है, विवाह वन्धन शिथिल हो गये है, संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। अतिथि सत्कार, गुरु-पूजा, वर्णाश्रमव्यवस्था सारी परम्पराएँ छिन्न-भिन्न हो रही है। इस मूल्य परिवर्तन ने हिन्दी कथा साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया।

व्यक्ति जब वैयक्तिकता को परे करते हुए औरों के लिए जो उसके आत्मीय नही हैं परन्तु 'मानवता धर्म' के कारण आत्मीय होते हैं उनकी सेवा करने वाले, उनके जीवन को सही आकार देने वाले व्यक्ति संसार का श्रेष्ठ कलाकार होते हैं। मानव सेवा की महानता में उनका विश्वास होता है। कमलेश्वर अपनी कहानियों के द्वारा मानवता की सेवा के मूल्य पर प्रकाश डालते हुए स्पष्ट करते हैं चाहे आधुनिक युग में भौतिकवाद ने मनुष्य पर हावी होने का प्रयास किया है परन्तु इन्सान की इन्सानियत अब भी सुरक्षित है कला की सेवा तो सधन लोग कर सकते हैं परन्तु मानव सेवा करने के लिये निस्वार्थ वृत्ति चाहिए। मनुष्य का मनुष्य के प्रति निरपेक्ष और निस्वार्थ प्रेम और त्याग दिखाई देता है। लेखक ने अपने पात्रों के माध्यम से श्रेष्ठ कलाकार की व्याख्या प्रतिपादित की जो अनाथों का जीवन सँवारता है, मानवसेवा का व्रत अंगीकार करता है वह 'संतोष' मूल्य का धनी है वही श्रेष्ठ कलाकार है।

2.8.5 आध्यात्मिक मूल्य एवं सौंदर्यात्मक मूल्य

आध्यात्मिक मूल्यों के अन्तर्गत 'धर्म' को अब विकृत रूप प्राप्त हो चुका है। प्राचीन काल से हमारे संतों एवं भक्तों ने मनुष्य को भक्ति का आसान मार्ग भगवान का नामस्मरण बताया था परन्तु मनुष्य के स्वार्थ ने उसे विकृत रूप दिया है। एक तो वैज्ञानिक दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप धर्म को ईश्वर के प्रति दृष्टिकोण में मूलभूत अन्तर आया है। ईश्वर निष्ठा के बदले विज्ञान निष्ठा प्रबल हो गई परिणामस्वरूप व्यक्ति नास्तिकता की ओर बढ़ गयी, इसीलिए धर्म के बाह्यरूपों में मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, साधु-संन्यासी पाखण्डी लोगों की भक्ति में मनुष्य भगवान प्राप्ति का मार्ग देखने लगा।

जीवन मूल्य मानव के सहअस्तित्व के लिए बहुत जरूरी हैं। मूल्य मानवजीवन व्यवस्था की आधारशिला है। मानव की सामाजिक जीवन जीने की इच्छा उसकी उस समष्टिहित भावना को व्यक्त करती है जिसमें सभ्यता और संस्कृति विकसित होती है। सभ्यता और संस्कृति ही मानव- मूल्यों की सम्पोषक एवं संवर्धक है। ये मूल्य मानवीय उपलब्धियों के विविध रूप, धर्म, दर्शन, कला, साहित्य इत्यादि मे होते हैं, जो समाज, राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों तक फैले हुए हैं।

मनुष्य मूल्यों को अपनाएगा नहीं तो उसकी स्थिति उस आदि मानव की सी होगी, जो दूसरे से छीनकर खाता था और जिसके लिए स्वार्थ ही सर्वोपरि वस्तु थी।

मूल्य मानव समाज को एक उदात्तता प्रदान करते हैं। मानव इसलिए मानव कहलाता है क्योंकि वह मूल्यों को अपने जीवन में महत्वपूर्ण स्थान देता है।

मूल्य परम्परा का प्राणतत्व है। प्रत्येक समाज में परम्परागत मान्यताएँ रूढ होती हैं वे ही मूल्य होते हैं। मनुष्य का सम्बन्ध परिवार से है और परिवार का समाज से समाज का राष्ट्र से। अतः व्यक्ति का उदात्त मूल्यों का अंगीकार उसे महान बनाता है और महान पुरुषों का समुदाय 'समाज' होता है, ऐसे समाज में मूल्यवान घर का होना राष्ट्र को उदात्त बनाता है।

परिवार-समाज-राष्ट्र संकल्पनाएँ मूल्यों के आधार पर ही दृढ होती है। मूल्यों की पहली सीख परिवार में मिलती है। मानवीय क्रियाओं, आचार, व्यवहार में अच्छाई या शिवत्व याने सत्यं- शिवं-सुन्दरमं इसी के अन्तर्गत निहित दया, करुणा, ममता, त्याग, परोपकार, सहृदयता, सेवा, मानवता, क्षमा, शान्ति, अहिंसा आदि उदात्त मूल्य है। मूल्यों का वर्गीकरण कई रूपों में हुआ है। जैसे सौन्दर्यात्मक, नैतिक, जैविक, अतिजैविक मूल्य, परन्तु उनकी बुनियादी सत्यं- शिवं- सुन्दरम् इन शाश्वत मूल्यों पर ही स्थित हैं।

मनुष्य के लिए परिवार यह उसके जीवन की सबसे पहली पाठशाला है जहाँ वह मानवीय उदात्त जीवन मूल्यों का ग्रहण बीज रूप में करता है और उसका व्यावहारिक उपयोग का समाज रूपी दूसरी पाठशाला में करता है।

परिवार में दो- तीन पीढियाँ एक साथ रहती है। हर एक सदस्य का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व एवं अस्तित्व होता है। अतः हर एक सदस्य अपने अस्तित्व की पहचान का प्रयास करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। अपने विकास के लिए वह स्वार्थ स्वरूप अपना ही हितसंपादन देखता है। परन्तु जब उसका हितसंपादन स्वयं की अपेक्षा पर के लिए होता है तो वह हितसंपादन परोपकर त्याग या समर्पण कहलाता है। अतः त्याग, समर्पण एवं परोपकार आदि मूल्य उसे परिवार से मिलते हैं। माता-पिता अपनी सन्तान केलिए त्याग करते हैं और सन्तान माता-पिता के लिए, भाई-भाई के लिए भाई- बहन के लिए, बहन-भाई के लिए, बहन-बहन केलिए सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार होते है, अतः त्याग एवं समर्पण की पहली सीख परिवार से मिलती है। धीरे- धीरे व्यक्ति वैयक्तिक घेरे को तोडकर सामाजिक घेरे में त्याग करने केलिए प्रवृत्त होता है। व्यक्तिगत स्वार्थ के आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति नष्ट होकर समष्टि के लिए वह तत्पर हो जाता है। परिवार में भावनात्मक स्तर पर बंधा व्यक्ति वैसा ही बंधा रहे तो परिवार में एकात्मा बनी रही है वही एकात्मकता उसे सामाजिकता का संकेत देती है।

परिवार के दायरे से बाहर निकलकर मनुष्य व्यापकतर समाज में आता है। ग्राम, प्रान्त, देश सब उस व्यापक समाज के घटक हैं मनुष्य समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को महसूस करता है और समाज के लिए समर्पित होने के लिए अपने आपको तैयार करता है। इसी भावना से प्रेरित होकर क्रान्तिकारी देशभक्त,

समाजसुधारक, धर्मसुधारक, शिक्षा सुधारक समाज एवं राष्ट्र के सुरक्षा, विकास एवं उत्कर्ष के लिए तत्पर हो जाते हैं।

भारतीय समाज में मूल्यों का प्रमुख स्रोत 'धर्म' रहा है। धर्म मनुष्य को केवल पूजा-अर्चना, भजन, कीर्तन, जप, जाप, यज्ञ-याग आदि भक्ति के सोपान न बताकर मानवता का धर्म निभाने की सीख देता है, दीन दुःखियों के आँसू पोंछना, सेवाभाव, करुणा, त्याग, समर्पण, आत्मीयता, दया, ममत्व ही धर्म के वास्तविक अंग है यह प्रतिपादित करता है और उन्ही की सीख साहित्य के द्वारा समाज को दी जाती है। साहित्य और समाज का गहरा नाता इसी उत्तरदायित्व को निभाता है।

साहित्यकारों ने साहित्य में जीवन मूल्यों की दोनों स्थितियों का चित्रण किया है। एक ओर हमारे भारतीय संस्कारों से जुडे जीवन मूल्य हैं जो इस वर्तमान आधुनिक युग में तीव्रता से परिवर्तित हो रहे हैं परन्तु उसे रोक देने का कार्य भी साहित्यकारों के जरिए होता है। समाज को स्थायित्व देने वाले मूल्यों को सुरक्षित रखने का प्रयास जिन घटकों द्वारा किया जाता है उन्हें चुनकर कथातत्व बीज के रूप में साहित्य में लाने का कार्य साहित्यकार करता है।

मूल्यासंक्रमण से हमारे कोई भी मूल्य अछूते नहीं रहे। यहाँ पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक एवं सौन्दर्यमूलक तथा आध्यात्मिक क्षेत्रों में निहित स्थापित मूल्य, परिवर्तन की दिशा, मूल्यसंक्रमण की स्थिति इनकी चर्चा विशेष रूप से की गई है। पाश्चात्य संस्कृति ने हमारे जीवन को बहुत गहराई से प्रभावित किया भारतीय

परम्पराएँ, रिवाज प्रथाएँ धीरे-धीरे टूटती चली जा रही है, संयुक्त परिवार, अतिथि सेवा, भाईचारा, परोपकार की भावना एवं तत्सम्बन्धी, परम्पराएँ टूटने लगी हैं, वेशभूषा, खान-पान, रहन-सहन, पोशाक, आचरण, व्यवहार आदि में पाश्चात्य संस्कृति के परिणामस्वरूप अनुकरण की प्रवृत्ति निर्माण हो गयी, वह साधारण अनुकरण न होकर अन्धानुकरण साबित हुआ। मूल्यसंक्रमण से कुछ लाभ हुए जैसे बाल विवाह की प्रथा टूट गयी, विधवा विवाह का समर्थन होने लगा एवं आर्थिक क्षेत्र में समान रूप से अग्रसर हुए परन्तु इसके साथ ही संयुक्त परिवार टूटने लगे, एकाकी परिवारों की संख्या बढ गयी, अनाथ, अपाहिज, विकलांग, वृद्ध आदि लोगों की उपेक्षा होने लगी, समस्त सम्बन्धों पर 'अर्थ' प्रमुख रूप से हावी हो गया। 'अर्थ' ने सम्बन्धों को विघटित किया। मनुष्य ने अर्थ के कारण माता-पिता, भाई-बहन, पत्नी, बच्चे इन सम्बन्धों में निहित भावनात्मक संवेदनशीलता को जब खत्म कर दिया तब परिवार में अन्य सम्बन्ध जो सामाजिक दायरे में स्थित है उन्हें मिटा ही दिया।

समस्त रिश्ते झूठे हो गये, स्त्री- पुरुष सम्बन्धों में अनैतिकता बढ़ गयी, पति-पत्नी में दरारें होने लगी पारिवारिक सम्बन्धों में दूरियाँ आ गयी। दया, प्रेम, परोपकार आदि सद्प्रवृत्तियाँ लुप्त हो गई।

निष्कर्ष

जीवन मूल्य मानव के सहअस्तित्व के लिए जरूरी है, परन्तु आधुनिकता, पाश्चात्य विचार प्रणाली का प्रभाव तथा अन्धानुकरण, आत्मकेन्द्रित संकीर्ण मनोवृत्ति, आपसी स्वार्थ आदि ने वात्सल्य, ममत्व और प्रेम इनसे संबन्धित मूल्यों को प्रभावित किया है, जिससे उनकी अर्थवत्ता धूमिल हो गई है। इन्हीं उदात्त मूल्यों को मौलिक रूप में प्रस्थापित करना जरूरी है।

संदर्भ सूची

1. V.I. Lenin, Engles marxism, P. 31

2. पॉल हाल्ले फॉर्म, अनुवादक- हरिश्चंद्र उप्रेती, समाजशास्त्र का क्षेत्र एवं पद्धति, पृ. 82

3. W.S.Urban, Fundamental of Ethics, P. 16

4. H.M.Johnson, Sociology - A systematic introduction, P. 49

5. E.D. Charles, Morries of Human Values, P. 11

6. डॉ. ओमप्रकाश सारस्वत, बदलते मूल्य और आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ. 61

7. Borgadus, The Development of social thought, Macmillan, p. 63

8. C.A.Moore, The Indian Mind, P. 153

9. डॉ. रमेश देशमुख, आठवें दशक की हिन्दी कहानी और जीवन मूल्य, पृ. 13

10. डॉ. देवराज, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ. 168

11. डॉ. प्रभाकर माचवे, हिन्दी कोश भाग-1, पृ. 658

12. Mukargee B. Singh, The Frontiers of social sciences macmillian and co., P. 23

13. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश', स्वाधीनताकलीन हिन्दी साहित्य के जीवन मूल्य, पृ. 16

14. प्र.ग.सहस्रबुद्धे, जीवनमूल्य भाग-1, पृ. 184

15. डॉ. प्रभाकर माचवे, सं – धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्यकोश भाग-1, पृ. 604

16. डॉ. हुकुमचन्द्र राजपाल, आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य, पृ. 14

17. डॉ. भगवानदास वर्मा, कहानी की संवेदनशील सिद्धांत और प्रयोग, पृ. 125

18. धर्मवीर भारती, मानव मूल्य और साहित्य, पृ. 21

19. डॉ. जनेश्वर वर्मा, हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना, पृ. 32

20. डॉ. बैजनाथ सिंहल, नयी कविता, मूल्य-मीमांसा, पृ. 25-26

21. डॉ. हेमन्द्र कुमार पानेरी, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास- मूल्य संक्रमण, पृ. 5

22. डॉ. रमेश देशमुख, आठवें दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य (उद्धृत), पृ.24

23. डॉ. हुकुमचन्द्र राजपाल, आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य, पृ. 65

24. डॉ. रमेश देशमुख, आठवें दशक की हिन्दी कहानी और जीवन मूल्य, पृ. 23

25. आलोचना, अक्तूबर-दिसंबर, पृ. 3

26. डॉ. भैरूलाल गर्ग, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन, प्र. सं. 1979, पृ. 13

27. कमलेश्वर, नयी कहानी की भूमिका से, 1976, पृ. 31

28. डॉ. शिवप्रसाद सिंह, नवलेखन- स्थिति और समस्याएँ, कल्पना नवलेखन विशेषांक अगस्त – दिसंबर, 1969, पृ. 9

29. डॉ. भैरूलाल गर्ग, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन, प्र. सं 1979, पृ. 156

30. राजेन्द्र यादव, एक दुनिया समानान्तर, पृ. 30

31. डॉ. रमेश देशमुख, आठवें दशक की हिन्दी कहानी और जीवन मूल्य, पृ. 178